International Journal of Sanskrit Research 2016; 2(3): 27-30

International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519
IJSR 2016; 2(3): 27-30
© 2016 IJSR
www.anantaajournal.com
Received: 21-03-2016
Accepted: 22-04-2016

कन्हैया लाल यादव
(एस0आर0एफ0)शोधच्छात्र, संस्कृत विभाग इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद।

Correspondence
कन्हैया लाल यादव
(एस0आर0एफ0)शोधच्छात्र, संस्कृत विभाग इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद।

वाल्मीकीय रामायण में अनुप्रास विधान

कन्हैया लाल यादव

अलङ्कारशब्द 'अलम्' में 'कृ' धातु के प्रयोग से 'अलङ्कृयते अनेन' अथवा 'अलङ्करोति' में करण या भाव अर्थ में 'घञ्' प्रत्यय के योग से निष्पन्न है। जिसका तात्पर्य सजावट, सजाने या अलङ्कृत करने की क्रिया से है[1] अर्थात् जिस पदार्थ या तत्त्व के द्वारा कोई वस्तु सुशोभित की जाय उस वस्तु के सौन्दर्य में वृद्धि हो वह तत्त्व अलङ्कार कहलाता है। इसके प्रथम स्वरूप भौतिक दृष्टि में कुण्डल आदि के रूप में जो कि सामान्यतया हमें लोक में प्राप्त होते हैं ठीक उसी प्रकार से इसका दूसरा स्वरूप शब्द–अर्थ रूप शरीर वाले काव्य में उपमा आदिरूप में भी प्राप्त होता है। जिसके प्रमाण स्वरूप रसवादी आचार्य भरतमुनि के द्वारा सर्वप्रथम जो 'न हि रसादृते कश्चिदर्थ; प्रवर्तते' कहकर काव्य या नाट्य में रस की जो अनिवार्यता प्रतिपादित की है उससे यह स्पष्ट है कि नाट्यशास्त्रकार को नाटक में अलंकार इष्ट थे और साथ ही अन्य आचार्यों ने भी इस पर पूर्ण विचार किये हैं। जिनमें भामह ने कामिनी के मुख से काव्य की तुलना करते हुए उसमें अलङ्कार की प्रधानता स्वीकार किया।[2] उनके द्वारा दी गई महाकाव्य की परिभाषा में 'साऽलंकार' शब्द का प्रयोग अलङकार के महत्त्व को प्रतिपादन का ही परिचायक है।[3] दण्डी ने काव्य में अलङ्कार को शोभाकारक धर्मों के रूप में प्रस्तुत किया[4] तथा वामन ने सौन्दर्य को अलङ्कार मानकर उसी के द्वारा काव्य की ग्राह्यता को स्वीकार किया है।[5] उद्भट ने अलङ्कार की काव्य में समवाय सम्बन्ध से उपस्थिति मानते हुए अलङ्कार को काव्य के नित्यधर्म के रूप में स्वीकार किया है।[6] राजशेखर ने काव्यमीमांसा में 'गुणवद्लङ्कृत वाक्यमेव काव्यम्' का उल्लेख कर वाक्य में गुण एवं अलङकार की इष्टता को ही प्रस्तुत किया है। यदि अलङ्कारों के वर्गीकरण पर विचार किया जाय तो सर्वप्रथम नाट्यशास्त्र में चार–उपमा, रूपक, दीपक और यमक का जो उल्लेख भरतमुनि ने किया है उसके पश्चात् अलङ्कारों के विस्तृत और वैज्ञानिक विश्लेषण करते हुए भामह ने अपने 'काव्यालंकार' में कुल 38 अलङ्कारों का वर्णन किया, जिनमें दो अनुप्रास और यमक शब्दाऽलंकार तथा 36 अर्थाऽलंकार हैं, दण्डी ने कुछ इसी प्रकार 37 अलङ्कारों का विवेचन काव्यादर्श में किया है। जिनमें से दो यमक और चित्र शब्दाऽलंकार तथा 35 अर्थाऽलंकार हैं। दण्डी के पश्चात् के आचार्यों ने अलङ्कारों की संख्या में और भी वृद्धि की है। जिनमें उद्भट 4 शब्दाऽलंकार और 37 अर्थाऽलंकार, वामन दो शब्दाऽलंकार और 29 अर्थाऽलंकार, रूद्रट दो शब्दाऽलंकार और 29 अर्थाऽलंकार भोज ने शब्दाऽलंकार और 57 अर्थाऽलंकार, भोज ने शब्दाऽलंकार और उभयाऽलंकार, मम्मट ने 6 शब्दाऽलंकार और 62 अर्थाऽलंकार, रूय्यक ने 5 शब्दाऽलंकार, विश्वनाथ ने 7 शब्दाऽलंकार और 75 अर्थाऽलंकार, अप्पय दीक्षित ने 12 अलङकार, पण्डितराज जगन्नाथ ने तो अपने ग्रन्थ रसगशधर में तो लगभग 100 अलङ्कारों का विवेचन किया है। इस काव्यगत अलङ्कार शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग ऋग्वेद में प्राप्त होता है जहाँ अलम् पद का पर्याय अरम् रूप में प्राप्त है जिसकी निष्पत्ति 'ऋ' धातु से है जिसका अर्थ गति है जिससे शाब्दबोध, मुनि, गमन, व्यापार आदि अर्थ द्योतित होते हैं। इसके अतिरिक्त ऋग्वेद में 'अरङ्कृत' तथा 'अरङ्कृति' शब्द का प्रयोग अनेक स्थलों पर प्राप्त होता है। ऋग्वेद में वसिष्ठ ऋषि के वचन का उल्लेख है जिसमें वे इन्द्र से प्रश्न करते हैं 'का ते अस्त्यरङ्कृतिः सूक्तै;'[7]जो कि अलङ्कार के उद्भव का ही परिचायक है। इसके पश्चात् अलंकार शब्द का काव्यशास्त्रीय प्रयोग सर्वप्रथम यास्क ने अपने निरूक्त में करते हुए ऋग्वैदिक 'अरङ्कृत' और 'अलङ्कृत' पदों को पर्याय बताते हैं।[8] इसी क्रम में यदि यह कहा जाये कि महाकाव्यों में सर्वप्रथम अलङ्कारों का प्रयोग वाल्मीकि रामायण में ही हुआ है तो अतिशयोक्ति न होगी। इसमें भी अनुप्रास का जो प्रयोग वाल्मीकीय रामायण में प्राप्त होता है वह अत्यन्त विशिष्ट ही है। अलंकारों के विषय में भोज ने कहा कि–'प्रतिभावान् कवि के चित्त में सरस्वती स्वयं अनुप्रास का निवेश करती है।''[9] भोज का यह वाक्य वाल्मीकीय रामायण में प्रयुक्त अनुप्रास अलंकार के प्रयोग का ही अनुकरण करता है। भोज का अनुप्रास के विषय में कथन है कि –'यदि काव्य में लेशमात्र भी अनुप्रास का निवेश हो तो वह काव्य उपमादि अलंकारों से रहित होनेपर भी शोभायमान होता है।[10]जितनी सामर्थ्य ज्योत्सना की चन्द्रमा

को और लावण्य की स्त्रियों कोअलङ्कृत करने में है उतनी ही अनुप्रास में भी काव्य को अलङ्कृत करने में सामर्थ्य है।[11] यदि इसी दृष्टि से वाल्मीकीय रामायण में अनुप्रास विधान का अन्वेषण किया जाये तो हमें वाल्मीकि की दो दृष्टियों का जिसमें एक ओर उनके स्वाभाविक अनुप्रास के बोधक 'सम्भाराः सम्भ्रियन्ताम्'[12], 'लक्ष्मणो लक्ष्मिवर्धनः'[13], 'रथेन रथिनाम्'[14], 'जयेन जयेताम्'[15], 'आरूरोह वरारोहा'[16], 'विरराम रामा'[17], 'दक्षिणो दक्षिणां दिशम्'[18], 'शयानां शयने शुभे'[19], आदि अनेक शब्दों का प्रयोग तत्तत स्थलों में प्राप्त होता है तो वहीं दूसरी ओर उनके प्रयत्नतः प्रयोग का जो विस्तृत वर्णन प्राप्त होता है वह अद्‌भुत ही है तथा जैसा कि युद्धकाण्ड में श्रीराम और रावण के बीच युद्ध की निरन्तरता के प्रसंग में आये–

दशरथसुतराक्षसेन्द्रयोस्तयो–
र्जयमनवेक्ष्य रणे स राघवस्य।
सुरवररथसारथिर्महात्मा
रणरतराममुवाच वाक्यमाशु।।[20]

श्लोक में 'र' वर्ण की आवृत्ति अनुप्रासजन्य ही है। इसी प्रकार अरण्यकाण्ड में सीता की खोज करते हुए राम द्वारा वृक्षों और पशुओं से सीता के विषय में पूछने के प्रसंग में आये–

यदि दृष्टा त्वया जम्बो जाम्बूनदसमप्रभा।
प्रियां यदि विजानासि निःशङ्क कथयस्व में।।[21]

इस श्लोक में 'जम्बो' के समान नाद वाले 'जाम्बूनद' की उपमा अनुप्रासजन्य ही है। काव्यशास्त्रीय आचार्य विश्वनाथ ने अपने ग्रन्थ साहित्यदर्पण में वाल्मीकि के द्वारा प्रतिपादित किये गये अनुप्रास सम्बन्धी विषयों का अनुकरण करते हुए इस अलंकार की सुस्पष्ट परिभाषा–''अनुप्रासः शब्दसाम्यं वैषम्येऽपि स्वरस्य यत्।'' में 'शब्दसाम्य' को अनुप्रास कहा तथा आचार्य मम्मट ने अपने काव्यप्रकाश में 'वर्णसाम्यमनुप्रासः' कहकर अनुप्रास में साम्य का अभिप्राय वर्णों की आवृत्ति से किया है। अतः इन आचार्यों द्वारा प्रतिपादित अनुप्रास की परिभाषाओं का स्पष्ट उदाहरण स्वरूप वाल्मीकि के उपर्युक्त श्लोकों में परिलक्षित है।

आचार्य विश्वनाथ ने अनुप्रास के भेदों का उल्लेख करते हुए–'क्षेकोव्यञ्जनसङ्घस्य सकृत्साम्यमनेकधा'[22] में कहते हैं कि अनेक व्यञ्जनों की स्वरूप और क्रम से हुई केवल एकबार की आवृत्ति में क्षेकानुप्रास है। जिसके उदाहरण का रामायण में कई स्थलों पर प्रयोग प्राप्त होता है। जैसा कि किष्किन्धाकाण्ड के–

एवं विचित्राः पतगा नानारावविराविणः।
वृक्षगुल्मलताः पश्य सम्पतन्ति समन्ततः।।[23]

प्रस्तुत श्लोक में 'राव रावि' में दो व्यंजनों की एकबार आवृत्ति हुई है, ठीक इसी प्रकार अरण्यकाण्ड के–

यदि मामाश्रमगतं वैदेही नाभिभाषते।
पुरः प्रहसिता सीता विनशिष्यामि लक्ष्मण।।[24]

प्रस्तुत श्लोक में 'सिता सीता' दो व्यंजनों की आवृत्ति वाल्मीकि के द्वारा किये गये क्षेकानुप्रासगत प्रयास का ही परिणाम है।

अनुप्रास के दूसरे भेद वृत्यानुप्रास का उल्लेख करते हुए आचार्य विश्वनाथ कहते है कि–

अनेकस्यैकधा साम्यमसकृद्वाप्यनेकधा।
एकस्य सकृद्‌प्येष वृत्यनुप्रास उच्यते।। [25]

अर्थात् जिसमें अनेक व्यंजनों का केवल स्वरूपतः साम्य हो या अनेक व्यंजनों का उसी स्वरूप और उसी क्रम से दो से अधिक बार आवृत्ति हो या केवल एक वर्ण की एक ही बार आवृत्ति हो अथवा अनेक बार हो तो वहाँ तीन प्रकार का वृत्यानुप्रास अलंकार होता है। जिसके उदाहरण स्वरूप प्रयोग वाल्मीकीय रामायण में अनेक स्थलों पर प्राप्त होता है। जैसा कि अयोध्याकाण्ड के–

सारथे पश्य विध्वस्ता अयोध्या न प्रकाशते।
निराकारा निरानन्दा दीनाप्रतिहतस्वना।।[26]

प्रस्तुत श्लोक में 'न्दा', 'दीना' की केवल स्वरूपतः आवृत्ति में प्रथम, तथा 'त' की एकबार तथा 'रा' की अनेकबार आवृत्ति में तीसरे प्रकार के वृत्यानुप्रास का भेद परिलक्षित है और अयोध्याकाण्ड के–

तं तपन्तमिवादित्यमुपपन्नं स्वतेजसा।
ववन्दे वरदं वन्दी विनयज्ञो विनीतवत्।।[27]

प्रस्तुत श्लोक में 'त्', 'व्', 'न्', 'द्' व्यंजनों की आवृत्ति वृत्यानुप्रास का ही बोधक है, तथा किष्किन्धाकाण्ड के–

अस्यां महिष्यां तु भृशं रूदत्यां
पुरेऽतिविक्रोशति दुःखतप्ते।
हते नृपे संशयितेऽङ्गदे च
न राम राज्ये रमते मनो मे।।[28]

प्रस्तुत श्लोक में 'र' और 'म' का पुनः–पुनः आवृत्ति वृत्यानुप्रास का ही बोधक है। आचार्य विश्वनाथ ने अपने साहित्य दर्पण में अनुप्रास के भेद अन्त्यानुप्रास की परिभाषा का उल्लेख करते हुए–

व्य×जनं चेद्यथावस्थं सहाद्येन स्वेरण तु।
आवर्त्यतेऽन्त्ययोज्यत्वादन्त्यानुप्रास एव तत्।।[29]

कहते हैं कि पहले स्वर के साथ यदि यथावस्थ व्यऽजन की आवृत्ति हो तो उसे अन्त्यानुप्रास कहते हैं। कुछ इसी प्रकार के उदाहरण वाल्मीकि रामायण में भी प्राप्त होता है। जैसा कि किष्किन्धाकाण्ड के–

व्यपेतपङ्कासु सवालुकासु
प्रसन्नतोयासु सगोकुलासु।
ससारसारावविनादितासु
नदीषु हंसा निपतन्ति हृष्टाः।।[30]

प्रस्तुत श्लोक में प्रथम तीन चरणों के अन्त में 'आसु' शब्द की आवृत्ति होने से तथा प्रथम दो चरणों के अर्द्धभाग के अन्त में 'आसु' शब्द की आवृत्ति होने से पादान्तानुप्रास है। इसी प्रकार किष्किन्धाकाण्ड के–

सचक्रवाकानि सशैवलानि
काशैर्दुकूलैरिव संवृतानि।
सपत्ररेखाणि सरोचनानि
बधूमुखानीव नदी मुखानि।।[31]

प्रस्तुत श्लोक के चारों चरणों में 'आनि' शब्द की आवृत्ति तथा द्वितीय एवं चतुर्थ चरण के प्रथम अर्द्धभाग के अन्त में 'इव' पद की आवृत्ति से पादान्तानुप्रास है। इसी प्रकार सुन्दरकाण्ड के–

शारदाम्बुधरप्रख्यैर्भवनैरूपशोभिताम्।
सागरोपमनिर्घोषां सागरानिलसेविताम्।।[32]

प्रस्तुत श्लोक के द्वितीय एवं चतुर्थ चरण के अन्त में 'इताम्' पद की आवृत्ति होने से यहाँ पादगत अन्त्यानुप्रास है।
आचार्य विश्वनाथ लाटानुप्रास की परिभाषा का उल्लेख करते हुए कहते हैं कि–

शब्दार्थयोः पौनरूक्त्यं भेदे तात्पर्यमात्रतः।
लाटानुप्रास इत्युक्तो अनुप्रासः पऽचधा ततः।। [33]

अर्थात् तात्पर्य के भेद से शब्द और अर्थ की पुनरूवित में लाटानुप्रास होता है तथा यह एकपदगत, बहुपदगत, एक समासगत, भिन्न समासगत तथा समास असमासगत के भेद से पांच प्रकार का होता है। इन लाटानुप्रास के पाँचों भेदों का वर्णन महर्षि वाल्मीकि ने सहज रूप से किया है। जैसा कि अयोध्याकाण्ड के–

न हि तद् भविता राष्ट्रं यत्र रामो न भूपतिः।
तद् वनं भविता राष्ट्रं यत्र रामो निवत्स्यति।। [34]

प्रस्तुत श्लोक में 'भविता राष्ट्रं यत्र रामो' इन चारों पदों की आवृत्ति एवं दोनों चरणों में प्रयुक्त इन शब्दों के अर्थ समान होते हुए भी भिन्न पदों से अन्वित होने के कारण उनके तात्पर्य में भिन्नता परिलक्षित है जैसे–तृतीय चरण में प्रयुक्त 'वन' पद में 'राष्ट्र' का आरोप होने से 'राष्ट्र' पद आरोप्यमाण अर्थात् विषयी के रूप में प्रयुक्त है। इसी प्रकार द्वितीय चरण में प्रयुक्त 'राम' पद 'भूपति' से है तथा चतुर्थ चरण में प्रयुक्त 'राम' पद का सम्बन्ध 'निवत्स्यति' क्रिया से होने के कारण उनका आशय भिन्न है। अतः यहां लाटानुप्रास के भेदों में बहुपदगत लाटानुप्रास है क्योंकि यहां कई पदों की एक साथ आवृत्ति है। इसी प्रकार अयोध्याकाण्ड के–

सौमित्रे योऽभिषेकार्थे मम सम्भारसम्भ्रमः।
अभिषेकेनिवृत्त्यर्थे सोऽस्तु सम्भारसम्भ्रमः।।[35]

प्रस्तुत श्लोक में 'अभिषेक' एवं 'सम्भारसम्भ्रमः' पदों की आवृत्ति के कारण बहुपदगत लाटानुप्रास है। अरण्यकाण्ड के–
कृताभिषेकः स रराज रामः

सीताद्वितीयः सह लक्ष्मणेन।
कृताभिषेकस्त्वगराजपुत्र्या
रूद्रः सनन्दिर्भगवानिवेशः।। [36]

प्रस्तुत श्लोक में 'कृताभिषेक' पद की आवृत्ति होने से एकपदगत लाटानुप्रास है। किष्किन्धाकाण्ड के–

सारसारावसंनादैः सारसावानादिनी।
याऽऽश्रमे रमते बाला साद्य में रमते कथम्।। [37]

प्रस्तुत श्लोक में ''वृत्तावन्यत्र तत्र वा। नाम्नः स वृत्त्यवृत्त्योश्च''[38] के अनुसार आवृत्त 'सारस' पद दो भिन्न समासों में प्रयुक्त होने से द्विसमासगत लाटानुप्रास है। सुन्दरकाण्ड के–

मधुरा मधुरालापा किमाह मम भामिनी।
मद्विहीना वरारोहा हनुमन् कथयस्व में।
दुःखाद् दुःखतरं प्राप्य कथं जीवति जानकी।। [39]

प्रस्तुत श्लोक में प्रथम 'मधुर' एवं 'दुःख' दोनों पद स्वतंत्र होने से उनमें कोई समास नहीं है तथा द्वितीय 'मधुर' एवं 'दुःख' दोनों पद समासयुक्त होने से असमासगत एवं समासगत नामक लाटानुप्रास के भेदों में से एक भेद है। इसी प्रकार से वाल्मीकीय रामायण में अनुप्रास का सुन्दर निबन्धन सर्वत्र प्राप्त होता है। इस प्रकार के वाल्मीकीय रामायण में अनुप्रास के सुन्दर निबन्धन वाल्मीकि की अलंकारों के प्रति उत्पन्न कलात्मक अभिरूचि को प्रकट करती है। वाल्मीकि ने स्वयं ही अलंकारशास्त्रीय ग्रन्थों के समान अलंकारों का साम्य स्त्री आभूषणों से करते हुए कहते हैं कि–अलंकार तथा स्नान–अनुलेपन आदि अंगसंस्कार से रहित सीता व्याकरणादिजनित संस्कार से शून्य होने के कारण अर्थान्तर को प्राप्त हुई वाणी के समान पहचानी नहीं जा सकी। हनुमान जी ने बड़े कष्ट में उन्हें पहचाना।'' [40] वाल्मीकि का यह कथन अलंकारों के द्वारा स्त्रियों की पहचान एवं अलंकारों को उनके शोभाधायक तत्वों के रूप में प्रस्तुत करता है। किन्तु वाल्मीकि का यह अलंकारों के विवेचन की पद्धति को उनका लक्ष्य नहीं कहा जा सकता अपितु उनके किसी अतिरिक्त प्रयास किये बिना अनायास ही अनेक अलंकार उनकी कृति में समाविष्ट हो गये। जिसकी पुष्टि आनन्दवर्धन के 'महाकवि की प्रतिभा ही कुछ ऐसी होती है कि उसके भाव स्वभावतः सरस और साऽलंकार होते हैं। अपने सरस भावों को अलंकृत करने के लिये उसे पृथक् प्रयत्न नहीं करना पड़ता[41], अपितु अलंकार स्वयं महाकवि के पास दौड़े आते हैं। [42] अलंकार के विषय में ध्वन्यालोक में उद्धृत कथन से स्वतः सिद्ध हो जाती है। जैसे वाल्मीकि के–

सारथे पश्य विध्वस्ता अयोध्या न प्रकाशते।
निराकारा निरानन्दा दीना प्रतिहतस्वना।। [43]

प्रस्तुत श्लोक में राम से रहित अयोध्या नगरी के वर्णन से पाठक के समक्ष अनायास ही एक विरहिणी नायिका का चित्र उपस्थित हो जाता है ठीक उसी प्रकार की क्रमिक सुन्दर पद्धति अनायास ही वाल्मीकि को लेखनी का अनुकरण करते हुए उनके काव्यशिल्प को सर्वोत्कृष्टता प्रदान करती है। अतः निष्कर्षत हम कह सकते हैं कि वाल्मीकीय रामायण में प्रायः मुख्य–मुख्य सभी निदर्शना, दृष्टान्त, प्रतिवस्तूपमा, व्यतिरेक, उपमा, उत्प्रेक्षा और अतिशयोक्ति आदि अलङ्कारों का प्रयोग तो प्राप्त होता है किन्तु उनमें अनुप्रास विधान की जो छटा वाल्मीकि ने प्रस्तुत किया है उसके सम्मुख अन्य अलङ्कारों की प्रभावशीलता न्यून प्रतीत होती है। यदि वाल्मीकीय रामायण को अनुप्रास विधान सर्वप्रमुख प्रथम ग्रन्थ कहा जाय तो यह अतिशयोक्ति न होगी।

सन्दर्भ–

1. संस्कृत हिन्दी शब्दकोश – वामन शिवराम आप्टे, पृ0–119।
2. न कान्तमपि निर्भूषं विभाति वनितामुखम्।(भामह–काव्यालंकार –2.131)
3. संर्वबन्धोमहाकाव्यं महताऽच महच्चयत्।अग्राभ्यशब्दर्थ्यऽच सालंकारं सदाश्रयम्।। (भामह–काव्यालंकार–1–19)
4. काव्यशोभाकरान् धर्मानलंकारन् प्रचक्षते।ते चाद्यापि विकल्पयन्ते कस्तान् कात्सर्येन वक्ष्यति।। (काव्यादर्श–2.1)
5. काव्यं ग्राहयमलंकारत्। सौन्दर्यमलंकारः। (काव्यलङ्कारसूत्र–1.1. 1–2)
6. ओजः प्रभृतीनामुपासोपमादीनां चोभयेषामपि समवायवृत्यास्थितिरिति गुड्ड्ठलिकाप्रवाहेणैवेषां भेदः। (काव्यलङ्कारसारसंग्रह)
7. ऋग्वेद–7.29.3।
8. सोमा अरङ्कृताः। (निरूक्त–10.12)
9. निवेशयति वाग्देवी प्रतिभानवतः कवेः।पुण्यैरमुमनुप्रासं ससमाधिनिचेतासि।। (शृंगारप्रकाश)
10. उपमादिविमुक्तापि राजते काव्यपद्धतिः।यद्यनुप्रासलेशोऽपि हन्त तत्र निवेश्यते।। (शृंगारप्रकाश)
11. यथाज्योत्सना चन्द्रमसं यथा लावण्यमंगनाम्।अनुप्रासस्तथा काव्यमलंकर्तुमयं क्षमः।। (शृंगारप्रकाश)
12. वा0रा0–बालकाण्ड–12/12
13. वा0रा0–बालकाण्ड–18/28
14. वा0रा0–अयोध्याकाण्ड–3/23
15. वा0रा0–अयोध्याकाण्ड–20/10

16. वा0रा0–अयोध्याकाण्ड–40 / 13
17. वा0रा0–अयोध्याकाण्ड–44 / 30
18. वा0रा0–सुन्दरकाण्ड–1 / 9
19. वा0रा0–सुन्दरकाण्ड–10 / 50
20. वा0रा0, युद्धकाण्ड, 107 / 67
21. वा0रा0, अरण्यकाण्ड, 60 / 19
22. साहित्यदर्पण–9 / का0–3।
23. वा0रा0–किष्किन्धाकाण्ड–1 / 26
24. वा0रा0–अरण्यकाण्ड–58 / 10
25. साहित्य दर्पण–9 / का0–4।
26. वा0रा0–अयोध्याकाण्ड–113–24।
27. वा0रा0–अयोध्याकाण्ड–16–11।
28. वा0रा0–किष्किन्धा काण्ड–24–5।
29. सा0द0–10 / का0–6।
30. वा0रा0–किष्किन्धाकाण्ड–30 / 42
31. वा0रा0–किष्किन्धाकाण्ड–30 / 55
32. वा0रा0–सुन्दरकाण्ड–3 / 3
33. सा0द0–10 / का0–7।
34. वा0रा0–अयोध्याकाण्ड–37 / 29।
35. वा0रा0–अयोध्याकाण्ड–
36. वा0रा0–अरण्यकाण्ड
37. वा0रा0–किष्किन्धाकाण्ड
38. काव्यप्रकाश–9 / वृत्ति–115
39. वा0रा0–सुन्दरकाण्ड–66 / 15।
40. दुःखेन बुबुधे सीतां हनुमाननलंकृताम्।संस्कारेण यथा हीनां वाचमर्थान्तरं गताम्।।–(वा0रा0–सुन्दरकाण्ड–15 / 39)
41. रसवन्ति हि वस्तूनि साऽलंकाराणि कानिचित्।एकेनैव प्रयत्नेन निर्वर्त्यन्ते महाकवेः।। – (ध्वन्यालोक, द्वितीय उद्योत)
42. अलङ्कारान्तराणि हि निरुप्यमाणदुर्घटनान्यपि।रससमाहिताहितचेतसः प्रतिभावतः कवेरहम्पूर्विकया परापतन्ति।।(ध्वन्यालोक, द्वितीय उद्योत)
43. वा0रा0–अयोध्याकाण्ड, 113 / 24।